स वै पुंसां परो धर्मो यतो भक्तिरधोक्षजे ।
अहैतुक्यप्रतिहता ययात्मा सुप्रसीदति ॥

धर्मः स्वनुष्ठितः पुंसां विष्वक्सेन कथासु यः ।
नोत्पादयेद् यदि रतिं श्रम एव हि केवलम् ॥

भागवत-पत्रिका

सर्वोत्कृष्ट धर्म है वह जो आत्मा को आनन्द प्रदायक ।
भक्ति अधोक्षज की अहैतुकी विघ्नशून्य अति मंगलदायक ॥

सब धर्मों का श्रेष्ठ रीति से पालन करते जीव निरन्तर ।
किन्तु हरि-कथा-प्रीति न हो श्रम व्यर्थ सभी केवल बंधनकर ॥

वर्ष ११ | गौराब्द ४८४, मास—नारायण ४, वार—अनिरुद्ध, बुधवार, ३० अग्रहायण, सम्वत् २०२७, १६ दिसम्बर १९७० | संख्या ७

दिसम्बर १९७०

श्रीमद्भागवतीय श्रीकृष्णस्तोत्राणि

श्रीब्रह्मणा कृतं श्रीकृष्णस्तोत्रम्

(श्रीमद्भागवत १०।१४।१—४०)

(गताङ्क, पृष्ठ ११६ से आगे)

क्वाहं तमोमहदहंखचराग्निवाभूवसंवेष्टिताण्डघटसप्तवितस्तिकायः ।
क्वेदृग्विधाविगणिताण्डपराणुचर्यावाताध्वरोमविवरस्य च ते महित्वम् ॥११॥

हे भगवन् ! प्रकृति, महत्तत्त्व, अहंकार, आकाश, वायु, अग्नि, जल एवं भूमि द्वारा संवेष्टित ब्रह्माण्डरूप घट मध्यवर्त्ती सप्त वितस्ति परिमित शरीरधारी यह ब्रह्मा ही कहाँ है और जिनके रोमकूप गवाक्ष-पथमें इस प्रकारके अगणित ब्रह्माण्ड परमाणु की तरह विचरण कर रहे हैं—ऐसे आपकी महिमा की ही क्या तुलना है ! (इसका गूढ़ तात्पर्य यही है कि इस नगण्य व्यक्ति का अपराध क्षमा करने योग्य है ।) ॥ ११ ॥

उत्क्षेपणं गर्भगतस्य पादयोः किं कल्पते मातुरधोक्षजागसे ।
किमस्तिनास्तिव्यपदेशभूषितं तवास्ति कुक्षेः कियदप्यनन्तः ॥ १२ ॥

हे अधोक्षज ! गर्भगत सन्तान माताके पेटमें रहकर दोनों पैरों को ऊपर चलानेसे माता क्या उससे अप्रसन्न होती है या उसे अपराध मानती है ? उसी प्रकार चराचर विश्व को अपनी कुक्षि या कोखमें धारण करनेके कारण आप मातृस्वरूप होनेसे सन्तान तुल्य मेरा अपराध ग्रहण न करें। इस ब्रह्माण्डमें भाव, अभाव अथवा स्थूल, सूक्ष्म, कार्य, कारण आदि शब्द वाच्य कौनसा पदार्थ आपसे अलग है ?॥ १२ ॥

जगत्त्रयान्तोदधिसम्प्लवोदे नारायणस्योदरनाभिनालात् ।
विनिर्गतोऽजस्त्विति वाङ् न वै मृषा किं त्वीश्वर त्वन्न विनिर्गतोऽस्मि ॥१३॥

जिस समय प्रलयजलमें यह त्रिलोकी डूब गया था, उस समय उस जलमें अवस्थित नारायणके उदरस्थ नाभिनालसे ब्रह्मा प्रकाशित हुए थे—ऐसा पुराणकर्त्ता ऋषियों द्वारा वर्णन किया गया है । यह बात वस्तुतः मिथ्या नहीं है; तब हे ईश्वर, मैं क्या आपसे नहीं उत्पन्न हुआ ? (अर्थात् वस्तुतः आपसे ही उत्पन्न हुआ हूँ ।) ॥ १३ ॥

नारायणस्त्वं न हि सर्वदेहिनामात्मास्यधीशाखिललोकसाक्षी ।
नारायणोऽङ्गं नरभूजलायनात्तच्चापि सत्यं न तवैव माया ॥ १४ ॥

आप क्या नारायण नहीं हैं ? आप ही नारायण हैं, क्योंकि आप ही सर्वदेहधारी जीव समूहके आत्मस्वरूप हैं—अर्थात् नार शब्दका अर्थ जीवसमूह, उनका अयन (आश्रय) जो हैं, वे नारायण आप ही हैं। हे अधीश, आपके नारायण होने का और एक कारण यह है कि आप अखिल लोकसाक्षी हैं अर्थात् लोकसमूहको जो जानते हैं, वे ही नारायण हैं। नरसे उत्पन्न चौबीस तत्त्व, उनसे उत्पन्न जल, जिनका अयन या आश्रय है, वे नारायण हैं। वे नारायण आपके अङ्ग अर्थात् विलासमूर्त्ति हैं । (अपरिच्छिन्न स्वरूप आपका आश्रय जल किस प्रकारसे हो सकता है ? उसीके उत्तरमें कह रहे हैं) आपका परिच्छिन्नत्व सत्य नहीं है, परन्तु वह आपकी माया है अर्थात् अचिन्त्य शक्तिका परिचय है या अपरिच्छिन्न होकर परिच्छिन्नकी तरह अवस्थान आपकी अचिन्त्य शक्तिका परिचय है । अथवा वह परम सत्य भी है, विराट् स्वरूप की तरह आपका नारायण रूप माया सम्बन्धीय नहीं है ॥१४॥

तच्चेज्जलस्थं तव सज्जगद्वपुः किं मे न दृष्टं भगवंस्तदैव ।
किं वा सुदृष्टं हृदि मे तदैव किं नो सपद्येव पुनर्व्यदर्शि ॥१५॥

हे भगवन् ! जगतके आश्रय स्वरूप आपके उस शरीरका प्रलय जलमें अवस्थान है, यह बात यदि सत्य है तो उस समय कमल नालमार्गमें प्रविष्ट होकर मैंने जब अन्वेषण किया, तब आपको क्यों नहीं देख सका ? यदि कहा जाय कि उसका अन्तःकरणमें दर्शन हो सकता है, तो अन्दर भी देख क्यों नहीं पाता ? तपस्या करने पर उस स्वरूपका तुरन्त ही दर्शन हुआ। अतएव इसे आपकी माया ही जाननी चाहिए ॥ १५ ॥

अत्रैव मायाधमनावतारे ह्यस्य प्रपञ्चस्य बहिः स्फुटस्य ।
कृत्स्नस्य चान्तर्जठरे जनन्या मायात्वमेव प्रकटीकृतं ते ॥ १६ ॥

हे माया के दमन करने वाले प्रभु ! इस अवतारमें आपने जननी यशोदा देवीको अपने उदरमें परिदृश्यमान यह समग्र जगत् दर्शन कराकर उसका मायामयत्व अर्थात् अचिन्त्य शक्तिभूतत्व प्रकाशित किया था ॥ १६ ॥

यस्य कुक्षाविदं सर्वं सात्मं भाति यथा तथा ।
तत्त्वय्यपीह तत् सर्वं किमिदं मायया बिना ॥ १७ ॥

हे भगवन् ! आपके कोखमें आपके साथ यह समग्र जगत् जिस प्रकार प्रकाश पा रहा है, बाहर भी उसी प्रकार प्रकाश पा रहा है—यह आपकी माया अर्थात् अचिन्त्य ऐश्वर्य के बिना कैसे हो सकता है ? उसे बाह्य जगतका प्रतिबिम्ब कहा नहीं जा सकता, क्योंकि प्रतिबिम्ब होने पर विपरीत रूपसे देखा जाता एवं दर्पणमें जिस प्रकार दर्पण प्रतिबिम्बित नहीं होता, उसी प्रकार आदर्श स्थानीय आपमें आपका प्रतिबिम्ब दृष्ट नहीं हो सकता—यही मूल तात्पर्य है ॥ १७ ॥

अद्यैव त्वद्दृतेऽस्य किं मम न ते मायात्वमादर्शित-
मेकोऽसि प्रथमं ततो व्रजसुहृद् वत्साः समस्ता अपि ।
तावन्तोऽसि चतुर्भुजास्तदखिलैः साकं मयोपासिता-
स्तावन्त्येव जगन्त्यभस्तदमितं ब्रह्माद्वयं शिष्यते ॥१८॥

हे भगवन् ! आपने क्या केवल अपनी जननीको ही यह रूप प्रदर्शन कराया था ? परन्तु आपके व्यतीत इस जगतका भी अचिन्त्य शक्तिभूतत्व अभी मुझको भी क्या प्रदर्शन नहीं कराया था ? क्योंकि पहले मैंने एकमात्र आपका ही दर्शन किया था । पश्चात् व्रजबालक और गोवत्स रूपसे आपका दर्शन किया । उसके पश्चात् मेरे साथ निखिल तत्त्व द्वारा उपासित उसी संख्यामें चतुर्भुज गोपबालक और वत्सरूपसे एवं उसी संख्यामें ब्रह्माण्ड रूपसे देखे गये । इस समय पुनः अपरिच्छिन्न अद्वितीय ब्रह्म रूपसे अवस्थान कर रहे हैं ॥१८॥

अजानतां त्वत्पदवीमनात्मन्यात्माऽऽत्मना भासि वितत्य मायाम् ।
सृष्टाविवाहं जगतो विधान इव त्वमेषोऽन्त इव त्रिनेत्रः ॥१९॥

(गुणावतार मूल श्रीविष्णु हैं—यही बात इस श्लोक में वर्णित हुई है) । जो व्यक्ति आपके स्वरूपसे परिचित नहीं हैं, उनके मतानुसार आत्मस्वरूप आप ही प्रकृतिमें स्थित होकर स्वतन्त्र रूपसे माया विस्तारपूर्वक सृष्टिमें ब्रह्माकी तरह, पालन कार्यमें विष्णु-रूपसे एवं संहार कार्यमें शिवकी तरह प्रकाशित होते हैं ॥१९॥

सुरेष्वृषिष्वीश तथैव नृष्वपि तिर्यक्षु यादस्स्वपि तेऽजनस्य ।
जन्मासतां दुर्मदनिग्रहाय प्रभोः विधातः सदनुग्रहाय च ॥२०॥

हे ईश ! हे प्रभो ! हे विधातः ! आप वस्तुतः जन्मरहित हैं तथापि देवता, ऋषि, नर, तिर्यक्, पशु, मत्स्यादि जलजन्तुओंमें आपका आविर्भाव केवलमात्र दुरात्मा लोगोंके गर्वनाश और साधु लोगोंके अनुग्रहके लिए ही हुआ करता है ॥२०॥

—※—

(क्रमशः)

भगवत्सेवामय दर्शन

आप लोग विश्वके सभी वस्तुओंको कृष्ण सेवोपकरण रूपसे दर्शन करें। इस जगत्की सभी वस्तुएँ ही कृष्ण सेवाकी सामग्रियाँ हैं। जिस दिन आप लोग द्वितीय अभिनिवेश के हाथसे रक्षा प्राप्त कर अद्वय-ज्ञान व्रजेन्द्रनन्दन वासुदेवमय जगत दर्शन करेंगे, उस दिन आप लोग इस विश्वरूपमें ही गोलोक दर्शन करेंगे। आप लोग सभी नारियों को कृष्णकान्ता रूपसे दर्शन करें, उन्हें कृष्ण सेवामें नियुक्त करें, उनके ऊपर किसी प्रकार से भी भोगबुद्धि न करें। वे कृष्णभोग्या हैं, जीवों के कदापि भोग्या नहीं हैं। आप लोग पितामाताको अपनी इन्द्रिय भोग्य सामग्री न समझकर कृष्णके पितामाता रूपसे दर्शन करें, आप अपने पुत्रों को अपनी इन्द्रियभोग्य सामग्री न समझकर बालगोपालके सेवक रूपसे दर्शन किया करें, कदम्ब दर्शन करें, यमुना और यमुना-पुलिन का दर्शन करें। आप लोगोंकी विश्वानुभूति न रहकर गोलोक दर्शन होगा, गृहमें गोलोक का सौन्दर्य प्रकाशित होगा। उस समय मायिक गृहबुद्धि न रहेगी और गृहव्रतधर्मके हाथसे आप रिहाई प्राप्त करेंगे।

श्रीचैतन्य महाप्रभु परिपूर्णतम चेतन वस्तु हैं। जो व्यक्ति इन चैतन्यमहाप्रभु का भजन नहीं करते, उनका उपदेश जिसके कानमें प्रविष्ट नहीं होता, वह व्यक्ति निश्चय ही अचेतन वस्तु है। वर्त्तमान समाजमें बहुतसे व्यक्ति श्रीचैतन्य महाप्रभुकी चैतनमयी वाणी श्रवण न करने के कारण बहुतसे बाहरी विषयों में अभिनिविष्ट हो रहे हैं। जो व्यक्ति श्रीचैतन्यमहाप्रभु की दया विचार करने का सौभाग्य प्राप्त हैं, वे निरन्तर चैतन्य-चरण-कमल-सेवा को छोड़कर दूसरे किसी अभिलाषाको हृदयमें थोड़ी देरके लिए भी स्थान नहीं दे सकते। अतएव श्रील कृष्णदास कविराज गोस्वामीने भी कहा है:—

"चैतन्यचन्द्रेर दया करह विचार।
विचार करिले चित्ते पावे चमत्कार॥"

श्रीचैतन्य महाप्रभुकी कृपा-वाणी जिस परिणाममें जिसके कानोंमें प्रविष्ट हुई है, वे उसी परिमाणमें उनकी सेवामें लुब्ध हुए हैं। जिस व्यक्तिने पूर्णरूपसे उस परिपूर्णतम चेतन विग्रह की बात श्रवण की है, वह उनकी सेवामें पूर्णरूपसे अपनेको आत्मसमर्पण कर चुका है। श्रीचैतन्य महाप्रभु सोलह कलायुक्त परिपूर्ण वस्तु हैं। इसलिए उनकी चेतनमयी बात जीवके हृदयमें प्रविष्ट होने पर जीवको सम्पूर्णरूपसे उनके पादपद्मोंमें आकृष्ट करेगी। जो व्यक्ति आंशिक रूपसे उनकी बात श्रवण किये हैं, वे आंशिक रूपसे अपनेको श्रीचैतन्य देवके पादपद्मोंमें समर्पण किए हैं। जब तक जीव देह, गृह, स्त्री-पुत्र-संतान, कायमनोवाक्य आदि यथासर्वस्व द्वारा श्रीचैतन्यदेवकी सेवामें निरन्तर तल्लीन न हो जाय, तब तक उन्होंने श्रीचैतन्यदेवकी वाणीका पूर्णरूपसे श्रवण नहीं किया है, यही जानना होगा। अतएव श्रीमद्भागवतमें कहा गया है:—

"येषां स एव भगवान् दययेदनन्तः
सर्वात्मनाश्रितपदो यदि निर्व्यलीकम् ।
ते दुस्तरामतितरन्ति च देवमायां
नैषां ममाहमितिधीः श्वशृगालभक्ष्ये ॥"

नित्यानन्दके चरणाश्रयके बिना श्रीगौरसुन्दरकी कृपा नहीं मिलती। नित्यानन्द-आश्रयसे जीवकी विवर्त्तबुद्धि दूर हो जाती है और वे असत्य को और सत्य नहीं मानते। श्रील श्रीनिवास आचार्य प्रभु, श्रील नरोत्तम ठाकुर और श्रीश्यामानन्द प्रभुने नित्यानन्द चरणाश्रय करनेके लिए जीवोंको आह्वान किया है। किन्तु उनके अप्रकटके कुछ समय बात ही अनादि बहिर्मुख समाजने उनकी मंगलमयी शिक्षा का परित्याग कर असत्यको सत्यके रूपमें ग्रहण कर समाजमें धर्म के नाम पर कलंक, वैष्णवता के नाम पर इन्द्रियतर्पण आदि कितने ही अनर्थोंको स्थान दिया है। गत तीन सौ वर्षके वैष्णवजगतके इतिहासमें घोर अन्धकार का बोलबाला था। उसमें से कदाचित् दो एक भजनानन्दियोंने स्वयं भजन किया था। किन्तु उन लोगोंने अत्यन्त बहिर्मुख समाजमें शुद्धभक्ति प्रचार करनेका अवसर बहुत ही कम पाया है।

हमने सोचा था कि श्रीमन्महाप्रभुके समयमें जो सभी विशुद्धात्मा महापुरुष प्रकट हुए थे, शायद हमारे भाग्यमें ऐसे महापुरुषोंका दर्शन-सङ्ग आदि न मिलेगा। किन्तु श्रीगौरसुन्दरने हमें ऐसे महापुरुषों का सङ्ग दिया है जो उनके प्रकटकालीन भक्तोंसे कम नहीं हैं। वे सब समय हरिकीर्त्तन और हरिभजन कर रहे हैं।

"कृष्णनाम करे अपराधेर विचार।
कृष्ण बलिले अपराधीर न हय विकार ॥
चैतन्य नित्यानन्दे नाहि ए सब विचार।
नाम लैते प्रेम देन बहे अश्रुधार ॥"
(श्रीचै०च० आदिलीला ८ म प० २४,३१)

अनर्थयुक्त अवस्थामें अप्राकृत कृष्णनाम कीर्त्तित नहीं होते। अपराधमय कृष्णनाम या नामापराध कोटि जन्म कीर्त्तन करने पर भी कृष्णचरणमें प्रेम नहीं प्रदान करता। किन्तु गौरनित्यानन्द के नाममें अपराधका विचार नहीं है। अनर्थयुक्त अवस्थामें जीव यदि निष्कपट भगवद्बुद्धिसे गौर-नित्यानन्दका नाम ग्रहण करें, तो उनके अनर्थ दूर हो जाते हैं। किन्तु यदि गौरनित्यानन्दके प्रति भोगबुद्धि लेकर अर्थात् गौरनित्यानन्द मेरे उदरभरण, प्रतिष्ठा-संग्रह या मेरे मनोधर्म के एक कल्पित मेरी इन्द्रियभोग्य वस्तुविशेष समझकर मुखमें 'गौर गौर' करनेसे मेरा गौरनाम कीर्त्तन न होगा, बल्कि भोगके ईन्धन स्वरूप मायाका नाम कीर्त्तन होगा मात्र। गौरनाम कीर्त्तन करनेसे ही नाम लेते ही प्रेमका उदय होगा, सभी अनर्थ दूर हो जायेंगे। कलकत्तासे हाउड़ा दो मील पश्चिममें है। यदि कोई कलकत्तासे दो मील पूर्व दिशामें आकर मैं निश्चय ही हाउड़ा पहुँच गया--ऐसी कल्पना करें, तो कर भी सकता है। परन्तु उसके कल्पित हाउड़ामें आकर वह व्यक्ति ट्रेन नहीं पकड़ सकता। एकबार संवाद-पत्रमें आया था कि एक स्थानमें "प्राण गौरनित्यानन्द, प्राण गौरनित्यानन्द" कहते कहते एक दस्युदलने डकैती डाली थी। ऐसे दस्यु दलका गौरनित्यानन्द नामाक्षर शुद्ध गौरनित्यानन्द नाम नहीं है।

व्यासावतार श्रील वृन्दावनदास ठाकुरने श्रीचैतन्य भागवतके मंगलाचरणमें जो

श्रीमन्महाप्रभुको प्रणाम किया है, उसमें श्रीगौरसुन्दरका तत्त्व सुन्दर रूपसे व्यक्त है—

"नमस्त्रिकालसत्याय जगन्नाथसुताय च ।
सभृत्याय सपुत्राय सकलत्राय ते नमः ॥"

श्रीगौरसुन्दर त्रिकालसत्य वस्तु हैं । अक्षजद्रष्टा, जिस प्रकार गौरसुन्दरको मर्त्य-जीवकी तरह जगतमें किसी समय प्रकट और कुछ समय पीछे अप्रकट होते देखकर उन्हें 'महापुरुष' या कुछ कालके लिए उदित एक धर्मप्रचारक मात्र समझते हैं और उनके धर्मप्रचारकी तात्कालिक उपयोगिता कल्पना कर उनके सर्वश्रेष्ठ-दान और नित्यचरम प्रयोजन लाभसे वंचित होते हैं, श्रीगौरसुन्दर उस प्रकारके वस्तुविशेष नहीं हैं । वे त्रिकालसत्य वास्तव वस्तु हैं । वे श्रीजगन्नाथ मिश्रके नन्दन अर्थात् आनन्दवर्द्धक हैं । श्रीजगन्नाथ मिश्र पिता रूपसे उनके सेवक हैं। श्रीगौरसुन्दर विष्णुपरतत्त्व हैं । और कोई उनके समान या उनसे बड़े नहीं हैं। पितामाता, गुरुवर्ग आदि भी गुरुरूपसे उन असमोर्द्ध्व परतत्वके सेवक हैं—

"पिता माता गुरु सखा भावे केने नय ।
कृष्णप्रेमेर स्वभाव दास्यभाव से करय ।"

वे गौरसुन्दर भृत्य वर्गके साथ, अपने पाल्यवर्गके साथ और शक्तिवर्गके साथ अद्वयज्ञान तत्त्वरूपसे नित्य विराजित हैं । वे नित्य वस्तु हैं, त्रिकाल सत्य वस्तु हैं; अतएव उनके भृत्यवर्ग, पाल्यवर्ग और शक्ति-वर्ग भी नित्य हैं । 'भृत्य' शब्दसे उनके सेवकोंको लक्ष्य किया गया है। जो व्यक्ति उनकी सेवाद्वारा उनके अन्तरङ्ग पाल्यवर्ग में परिगणित हुए हैं, वे उनके पुत्र हैं। 'आत्मा वै जायते पुत्रः'—श्रीगौरसुन्दर उनके पाल्यवर्गके पिता हैं । वे उनके पाल्यवर्गके विशुद्ध चित्तमें उदित होकर श्रीनामप्रेम प्रचार कर रहे हैं। ये ही उनके पुत्र हैं। ये सभी श्रीगौराङ्गके निजवंश हैं। श्रीभगवानके इन अच्युत गोत्रीय वंश्यगणोंने ही जगतमें श्रीगौरसुन्दरके नाम, प्रेम, प्रचार-धारा आदि की रक्षा की है और कर रहे हैं। जो व्यक्ति अप्राकृत विष्णुवस्तुमें प्राकृत बुद्धि कर च्युत गोत्रके परिचयमें नित्यानन्दाद्वैत कुलके कन्टकवृक्षस्वरूप होकर जगतका महान् अमंगल कर रहे हैं, वे यथार्थ 'नित्यानन्दाद्वैतके वंशज' नहीं हैं । जो व्यक्ति गौर-नित्यानन्दाद्वैतके अन्तरङ्ग सेवाधिकारकी प्राप्ति कर निरन्तर उनके मनोभीष्टका प्रचार कर रहे हैं, वे ही श्रीमन् महाप्रभुके और दोनों प्रभुओंके पाल्य अर्थात् पुत्र हैं। श्रीश्रीगौरनित्यानन्द उनकी निर्मल आत्मामें उदित होकर सुकृतिमान जीवोंके निकट जगतमें विस्तार प्राप्त कर रहे हैं।

'पुत्र' पिताको पुन्नामक नरकसे उद्धार करते हैं। इसलिए वे 'पुत्र' कहलाते हैं। जो पुत्र हरिभजन न कर दूसरे कार्योंमें व्यस्त हैं, वे 'पुत्र' नामक कलङ्क हैं । पिता यदि उस कुलाङ्गार पुत्रको पुत्रत्वमें स्वीकार या ग्रहण करनेसे पुन्नामक नरकसे उद्धार प्राप्ति नहीं होती तो उनका पुत्रोत्पादन कार्य जीवहिंसा-पूर्ण एक पापकार्य मात्र हो पड़ता है। जो पुत्र हरिभजन करते हैं, और जो पिता पुत्रको हरिभजनमें नियोग करते हैं, उस पुत्रके पिताका पुत्रोत्पादनरूप कार्य हरिभजनके अनुकूल और अन्तर्गत होता है। वैष्णव पुत्रमें और अवैष्णव पुत्रमें, वैष्णव पितामें और अवैष्णव पितामें यही भेद है।

श्रीगौरसुन्दर अभिन्न व्रजेन्द्रनन्दन हैं।

वैध-विचारसे श्रीविष्णुप्रियादेवी उनको कलत्ररूपा हैं। प्रकृत रूपमें या भजन विचार से श्रीस्वरूप दामोदर, श्रीजगदानन्द पंडित, श्रीनरहरि ठाकुर, श्रीगदाधर पंडित, श्रीराय रामानन्द आदि अन्तरङ्ग भक्त लोग उनके उज्ज्वल मधुर रसाश्रित त्रिकालसत्य कलत्र हैं। श्रीगौरसुन्दर अभिन्न व्रजेन्द्रनन्दन होने पर भी विप्रलम्भावतार हैं। श्रीकृष्ण संभोगमय विग्रह हैं और श्रीगौरसुन्दर विप्रलम्भमय विग्रह हैं। श्रीविष्णुप्रियादेवी प्रेम-भक्ति स्वरूपिणी हैं। कुछ शाक्तेयवादी, मनोधर्मी व्यक्तियों ने अपने क्षुद्र इन्द्रियज ज्ञान द्वारा श्रीगौरसुन्दरको माप लेने की चेष्टा कर गौरनागरीरूप पाषण्ड मतवादकी सृष्टि की है। वे दैवी मायासे विमोहित होकर श्रीगौरसुन्दरके उज्ज्वल-मधुर-रसाश्रित भक्तोंकी सुनिर्मल भजनप्रणाली न समझकर संभोगवादी होकर इस प्रकारके अनर्थका जगतमें प्रचार कर रहे हैं। उन्हें 'गौरभक्त' न कहकर 'गौरभोगी' कहना सङ्गत है।

—जगद्गुरु ॐ विष्णुपाद श्रील सरस्वती ठाकुर

—※—

प्रश्नोत्तर

(नवधाभक्ति)

१—श्रवणानुशीलन कितने प्रकार का है ?

"श्रवणगत अनुशीलन तीन प्रकार का है—शास्त्र-श्रवण, भगवन्नाम और भगवद्विषयक कीर्त्तन-श्रवण और भक्तिपूर्ण वक्तृता-श्रवण। भगवत्तत्त्व-विचार, भगवल्लीलादिके वर्णनरूप श्रीमद्भागवत-शास्त्र, वैष्णव-जीवन-चरित्र और वैष्णव-संसारके पौराणिक इतिहासादिके श्रवणको 'शास्त्र-श्रवण' कहा जा सकता है। वेदान्त तात्पर्यके साथ अवैष्णव-सिद्धान्तोंका खण्डनपूर्वक महानुभव वैष्णवोंने जिन सभी तत्त्व ग्रन्थोंकी रचना की है, उनके श्रवणको भी प्रधान भगवदनुशीलन कार्य जानना चाहिए।"

—चै० शि० ३।२

२—हरिकथा या सिद्धान्तका श्रवण करनेसे क्या होता है ?

"हरिकथा और हरितत्त्व सुनते-सुनते शास्त्रचर्चा होती है।"

—जै० ध० ८म प०

३—हरिकथा-श्रवणके द्वारा क्या प्रत्याहार और भजन होता है ?

"हरिकथा-श्रवणके द्वारा परानुशीलन और प्रत्याहार - ये दोनों कार्य ही सम्पादित होते हैं।"

—त० सू० ३४ वाँ सूत्र

४—श्रवणका अवस्था-भेद किस प्रकार होता है ?

"श्रवणकी दो अवस्थाएँ हैं—श्रद्धा-उदयके पूर्व साधुओंके मुखसे जो कृष्णगुणानुवाद का श्रवण होता है, वह एकप्रकारका श्रवण है, उस श्रवणसे ही श्रद्धाका उदय होता है। श्रद्धाके उदय होने पर गाढ़ पिपासाके साथ कृष्णनामादि श्रवण करनेकी प्रवृत्ति का उदय होता है। उसके पश्चात् गुरुवैष्णवों के मुखसे निःसृत जो कृष्णनामादिका श्रवण किया जाता है, उसीको द्वितीय श्रवण कहते हैं।"

—जै० ध० १९ वाँ अ०

५ साधनकालके श्रवणके द्वारा क्या सिद्धकालके श्रवणमें कोई सहायता मिलती है ?

"साधनकालमें गुरुवैष्णवोंके मुखसे श्रवण करते-करते सिद्ध-कालके श्रवणका उदय होता है।"

- जै० ध० १९ वाँ अ०

६—श्रवण-दशासे सम्पत्ति-दशा तक क्या क्रम है ?

"श्रीगुरुके मुखसे तत्त्व-श्रवण ही साधक की 'श्रवण-दशा' है। साधक व्याकुल होकर जब उस तत्त्वगत भावको अङ्गीकार करते हैं, वही 'वरण-दशा' है। रसस्मृति द्वारा जब उस भावका अभ्यास करते हैं, वही 'स्मरण-दशा' है। अपने आत्मामें उस सुष्ठुभावको लानेका नाम 'आपन या प्राप्ति-दशा' है। इस पार्थिव अनित्य सत्तासे पृथक् होकर अपने वांछित स्वरूपमें स्थिरीभूत होनेका नाम 'सम्पत्ति-दशा' है।"

—'भजन-प्रणाली' ह० चि०

७—कीर्त्तनगत अनुशीलनमें क्या क्या है ?

"कीर्त्तनगत अनुशीलन अत्यन्त उत्कृष्ट है। पूर्वोक्त की तरह शास्त्र-कीर्त्तन, नाम-लीलादि-कीर्त्तन, स्तव-पाठरूप कीर्त्तन, विज्ञप्ति और जप—ये पाँच प्रकारके कीर्त्तन हैं। नाम-लीलादिका कीर्त्तन वक्तृता, कथा, व्याख्या और गीतके द्वारा होता है। विज्ञप्ति तीन प्रकारकी है—प्रार्थनामयी, दैन्यबोधिका और लालसामयी।"

—चै० शि० ३।२

८—सभी भक्त्यङ्गोंमें श्रेष्ठ अङ्ग कौनसा है ?

"श्रवण, कीर्त्तन और स्मरण—इन तीन अङ्गोंमें कीर्त्तन सर्वप्रधान है। क्योंकि श्रवण और स्मरण कीर्त्तनके अन्तर्भूत होकर रह सकते हैं।"

—जै० ध० १९ वाँ अ०

९—कीर्त्तन सार्वजनीन धर्म क्यों है ?

"The principle of Kirtan invites, as the future church of the world, all classes of men without distinction of caste or clan to the highest cultivation of the spirit. This church, it

appears, will extend all over the world and take the place of all sectarian churches, which exclude outsiders from the precincts of the mosque, church or temple."

—Chaitanya Mahaprabhu's Life and Precepts.

"अर्थात् कीर्त्तनका सिद्धान्त जगतके भविष्यकी धार्मिक संस्था की तरह बिना किसी जाति, वर्ण, कुल आदि भेदभावके जगतके सभी वर्गोंके मनुष्योंको आत्माकी चरमोन्नत उन्नतिके लिए आह्वान कर रहा है। ऐसा जान पड़ता है कि यह सिद्धान्त जगतके सभी भागों में विस्तार प्राप्त करेगा और संकुचित धार्मिक संस्थाओंका स्थान ग्रहण करेगा, जो कि बाहरके व्यक्तियोंको मस्जिद, गिरजाघर या मन्दिरकी सीमाके भीतर प्रवेश करनेसे वर्जन करते हैं।"

१० - स्मरणानुशीलनमें क्या क्या अङ्ग है ?

"कृष्णके नाम, रूप, गुण, लीलाके स्मरण का नाम ही 'स्मरण' है। स्मरण पाँच प्रकार का है। थोड़े बहुत मनन या अनुसन्धानका नाम 'स्मरण' है। पूर्व विषयसे चित्तका आकर्षण कर सामान्याकारमें मनोधारणाका नाम 'धारणा' है। विशेष रूपसे रूपादिके चिन्तन का नाम 'ध्यान' है। अमृतधाराकी तरह निरन्तर्यमयी ध्यानका नाम 'ध्रुवानुस्मृति' है और ध्येयवस्तुकी स्फूर्त्तिका नाम 'समाधि' है।"

—जै० ध० १९ वाँ अ०

११—अमोघ प्रायश्चित्त क्या है ?

"श्रीविष्णु-स्मरणकी अपेक्षा गुरुतर प्रायश्चित्त जगतमें दूसरा कोई नहीं है।"

—'देवान्तरमें स्वातन्त्र्य ज्ञान'
ह० चि०

१२—स्मरण और ध्यानमें पार्थक्य क्या है ?

"स्मृति और ध्यानमें यही भेद है कि स्मृतिमें नाम, मन्त्र, रूप, गुण, लीला आदि का अल्प परिमाणमें उदय होता है। ध्यानमें रूप, गुण और लीलाका सुष्ठु रूपसे चिन्तन होता है। ध्यानको अधिक काल तक बनाये रखने का नाम 'धारणा' है। ध्यानको गाढ़ करने पर निदिध्यासन होता है। ध्यान ही धारणा और निदिध्यासनको क्रोड़ीभूत किये हुए है।"

—चै० शि० ३।२

१३—स्मृति कितने प्रकारको है और क्या क्या है ?

"स्मृति दो प्रकारकी है—नाम-स्मृति और मन्त्र-स्मृति। तुलसी मालामें संख्या रखकर हरिनाम करनेका नाम ही नाम-स्मृति है एवं हाथमें संख्या रखकर मन्त्र स्मरण करने का नाम ही मन्त्र-स्मृति है।"

—चै० शि० ३।२

१ —पादसेवन क्या है ? उसके अन्तर्गत कौन-कौनसे भक्त्यंग हैं ?

" 'पादसेवा' या 'परिचर्या' भक्तिका चतुर्थ अङ्ग है। श्रवण, कीर्त्तन और स्मरण-के साथ पादसेवा करनी चाहिए। पादसेवा-कार्यमें अपना अकिञ्चिनत्व, सेवामें अयोग्यत्व

बुद्धि एवं सेव्य वस्तुके प्रति सच्चिदानन्द-घनत्व-बुद्धिका नितान्त प्रयोजन है। पादसेवा-कार्यमें श्रीमुख-दर्शन, स्पर्शन, परिक्रमा, अनुव्रजन, भगवन्मन्दिर-गङ्गा-पुरुषोत्तम-द्वारका-मथुरा और नवद्वीपादि तीर्थस्थान दर्शनादि अन्तर्भाव हैं या उसीके अन्तर्गत हैं। श्रीरूपगोस्वामीने भक्तिके चौसठ अङ्ग वर्णन-प्रसङ्गमें इन सभी विषयोंको स्पष्ट रूपसे दिखलाया है। श्रीतुलसी-सेवा और साधुसेवा भी इसी अङ्गके अन्तर्भूत हैं।"

—जै० ध० १९ वाँ अ०

१५—अर्चन क्रियाकी आवश्यकता क्या है ?

"नाम—संकीर्त्तनसे सर्वसिद्धि होती है। तथापि भक्तिमय जीवनयात्राके लिए थोड़ी सी अर्चन-क्रियासे विशेष उपकार होता है।"

—भ० र० 'संक्षेपार्चन-पद्धति'

१६—अर्चन मार्गमें विशेष श्रद्धा होने पर क्या करना चाहिए ?

"अर्चन-मार्गमें अधिकार और प्रक्रिया-विचार बहुत प्रकारके हैं। श्रवण, कीर्त्तन और स्मरणमें नियुक्त होकर भी यदि अर्चन-मार्गमें श्रद्धा उदित हो, तो श्रीगुरुपादपद्ममें आश्रय ग्रहण कर मन्त्र-दीक्षा विधिपूर्वक ग्रहण कर अर्चन-कार्य करना चाहिए।"

– जै० ध० १९ वाँ अ०

१७—अर्चन मार्गमें दीक्षादि ग्रहण नहीं करने से क्या असुविधा होती है ? कौन-कौन विषय अर्चनमार्ग के अन्तर्गत हैं ?

"देहादि सम्बन्धके कारण जीव कदर्य-विषयों (दूषित मायिक विषयों) में विक्षिप्त-चित्त हो गया है। उस चित्त-विक्षिप्तता का संकोचकरण करनेके अभिप्रायसे मर्यादामार्गमें मन्त्रके साथ अर्चन-विधिका निरूपण किया गया है। विषयी लोगोंके लिए दीक्षाकी नितान्त आवश्यकता है। श्रीकृष्ण-मन्त्रमें 'सिद्ध-साध्य-सुसिद्धारि' विचारकी आवश्यकता नहीं है। कृष्णमन्त्र दीक्षा ही जीवोंके लिए अत्यन्त शुभकर है। जगतमें जितने भी मन्त्र हैं, उन सब मन्त्रोंसे श्रीकृष्णमन्त्र प्रबल है। सद्गुरुके निकट मन्त्र प्राप्त करनेके साथ ही साथ अधिकारी जीव कृष्णबल प्राप्त करते हैं। श्रीगुरुदेव जिज्ञासुको सभी अर्चनाङ्ग बतलाते हैं।***संक्षेपमें यही जानना आवश्यक है कि श्रीकृष्ण-जन्म, कार्त्तिक-व्रत, एकादशी-व्रत, माघ-स्नानादि—सभी ही अर्चनमार्ग के अन्तर्गत हैं। कृष्ण-विषयमें एक विशेष बात यह है कि कृष्णके साथ कृष्णभक्त का अर्चन भी अत्यन्त आवश्यक है।"

—जै० ध० १९ वाँ अ०

१८—अर्चक कितने प्रकारके हैं ? श्रीमन्महाप्रभु किस श्रेणी के अर्चक का अधिक आदर करते हैं ?

"Srimurti-worshippers are divided into two classes, the ideal and the physical. Those of the physical school are entitled from their circumstances of life and state of the mind to establisn temple-institutions. Those who are by circumstances and position entitled to worsh p the Srimurti in mind have, with due deference to the temple institutions, a tendency to worship usually by Sra-

van and Kirtan and their church is universal and independent of caste and colour Mahaprabhu prefers this latter class and shows their worship in this Shiksha-stak."

–Chaitanya Mahaprabhu's Life and Precepts

"अर्थात् श्रीमूर्त्ति-पूजक या अर्चक दो श्रेणियोंमें विभक्त हैं—(१) मानसिक पूजक और (२) केवल श्रीविग्रह पूजक । श्रीविग्रह-की पूजा करनेवाले व्यक्ति उनके जीवनके वातावरणके अनुसार और मानसिक अवस्थाके विचारसे मन्दिरादि स्थापन-निर्माण के अधिकारी हैं । जो व्यक्ति अपने वातावरण और अवस्थाके अनुसार श्रीमूर्त्तिकी मानसिक पूजा करनेके अधिकारी हैं, वे मठ-मन्दिरादि के लिए यथोचित सम्मान देते हुए प्रायः ही श्रवण और कीर्त्तन द्वारा पूजा करने की प्रवृत्तिसे युक्त होते हैं । उन लोगोंकी धार्मिक संस्था सार्वलौकिक या विश्व सम्बन्धीय है तथा वर्ण-जाति आदि भेदभावरहित है । श्री चैतन्य महाप्रभुने इस परवर्त्ती श्रेणी-को अधिक प्रधानता दी है और उनकी पूजा का विषय अपने 'शिक्षाष्टक' में वर्णन किया है ।"

१९—सम्बन्धज्ञानयुक्त श्रीमूर्त्ति सेवकका क्या कर्त्तव्य है ?

"सम्बन्धज्ञान युक्त होकर श्रीमूर्त्ति सेवा करनेके लिए कृष्ण-पूजा और भक्त-पूजा—दोनों एक ही साथ करना उचित है ।"

—जै० ध० ८ म अ०

२०—अर्चनविधिका क्या क्रम है ?

"श्रीगुरुको आसन, पाद्य, अर्घ्य, स्नानीय वस्त्र, आभरण देकर पूजा कर उनकी अनुमति से युगल-पूजा करनी चाहिए । पश्चात् गुरुको प्रसाद, पानीय आदि देकर दूसरे वैष्णव और देवादियोंको अर्पण करना चाहिए । पितृ लोगोंको भी महाप्रसाद अर्पण करना चाहिए ।"

—'गुर्ववज्ञा' ह० चि०

२१—विष्णु को छोड़कर दूसरे देवताओं-की पूजा करना क्या आवश्यक नहीं है ?

"विष्णु-पूजा द्वारा ही सभी देवताओंकी पूजा हो जाती है । अतएव दूसरे देवताओंकी पृथक् पूजा अनावश्यक है ।"

—'देवान्तरमें स्वातन्त्र्य ज्ञान' ह० चि०

२२—ऐकान्तिक भक्तोंमें कौनसी प्रवृत्ति प्रबलता होती है ?

"भक्तिसाधनमें दो प्रकारकी प्रवृत्ति है—(१) अर्चन-प्रवृत्ति और (२) स्मरण-कीर्त्तन प्रवृत्ति । दोनों ही उपादेय होने पर भी स्मरण-कीर्त्तन प्रवृत्ति ही ऐकान्तिक भक्तोंमें प्रबला होती है । बहुतसे महाजन लोग नाम-मालामें ही थोड़ा बहुत स्मरण और थोड़ा बहुत नाम-कीर्त्तन किया करते हैं । कीर्त्तन-का विशेष लाभ यही है कि उसमें श्रवण, कीर्त्तन और स्मरण—इन तीनों अङ्गोंका ही अनुशीलन हो जाता है ।"

—'भजन-प्रणाली' ह० चि०

२३—वन्दन किसे कहते हैं एवं वह कितने प्रकार का है ?

"वन्दन ही वैध-भक्तिका छठा अङ्ग है। पादसेवा और कीर्त्तनादिमें वन्दन अन्तर्भूत रहने पर भी उसे पृथक् अङ्गके रूपमें कहा गया है। नमस्कार ही वन्दन है। वह नमस्कार दो प्रकार का है--एकाङ्ग-नमस्कार' और 'अष्टांग नमस्कार'। नमस्कारमें एक-हाथ द्वारा किया नमस्कार, वस्त्रावृत देहके साथ नमस्कार, भगवानके आगे, पीछे, बाँए भागमें एवं मन्दिरके अत्यन्त निकट-गर्भमें नमस्कार अपराध माना गया है।"

जै० ध० १९ वाँ अ०

२४--दास्यके अन्तर्गत क्या क्या है ?

"मैं कृष्णदास हूँ--इस अभिमानका नाम ही दास्य है। दास्य-सम्बन्धके साथ भजन होने पर वह श्रेष्ठ है। नमस्कार, स्तुति, सर्वकर्मार्पण, परिचर्या, आचरण, स्मृति, कथा-श्रवण आदि दास्य के अन्तर्गत हैं।"

--जै० ध० १९ वाँ अ०

२५--सख्य कितने प्रकार है और क्या है ?

"कृष्णके हितचेष्टामय बन्धुभाव-लक्षण ही सख्य है। सख्य दो प्रकार का है--वैधाङ्ग सख्य और रागाङ्ग सख्य। यहाँ केवल वैधाङ्ग सख्यको ग्रहण करना होगा। अर्चा-मूर्त्तिकी सेवामें जो सख्य उदित होता है वही वैध-सख्य है।"

--जै० ध० १९ वाँ अ०

२६--आत्मनिवेदन का क्या लक्षण है ?

"देहादिसे लेकर शुद्धात्मा तक कृष्ण को अर्पण करने का नाम ही 'आत्मनिवेदन' का लक्षण है। जिस प्रकारसे विक्रीत गाय अपने पालनके लिए चेष्टा नहीं करती, यह भी उसी प्रकारसे है। कृष्णकी इच्छाके अनुगत रहना और अपनी इच्छाको कृष्णके अधीन करना--यह भी आत्मनिवेदनका लक्षण है।"

--जै० ध० १९ वाँ अ०

—जगद्गुरु ॐ विष्णुपाद श्रील भक्तिविनोद ठाकुर

श्रीमद्भागवतके टीकाकार (४)

वीरराघवाचार्य

परिचय—

विशिष्टाद्वैतवादी वीरराघवाचार्य अपने समयके मेधावी विद्वान् थे। उनके समय श्रीमद्भागवत शास्त्रका अनुशीलन एवं प्रामाण्य वृद्धिपथ पर था। प्रत्येक आचार्य अपने मन्तव्यकी पुष्टिके लिए भागवतके प्रमाण उद्धृत किया करते थे। श्रीरामानुज सम्प्रदायके श्रीसुदर्शन सूरीने 'शुकपक्षीया' टीकाकी रचना की थी। किन्तु यह संक्षिप्त होनेके कारण विद्वत्तापूर्ण होने पर भी सर्वसाधारण सम्प्रदायज्ञोंकी पिपासा तृप्त करनेमें असमर्थ

थी। साथ ही स्व-सम्प्रदायानुसार तत्त्वोंका निरूपण भी बड़े संकोचके साथ किया गया था, इसे ध्यानमें रखते हुए वीरराघवाचार्यने भागवतपर टीका करना एक आवश्यक कर्त्तव्य माना और टीकाकी रचना की।

वीरराघवाचार्यने 'भागवत-चन्द्र-चन्द्रिका' नामक टीकाका प्रणयन किया।

वीरराघवाचार्य दक्षिण देशके निवासी थे। इनका जन्मस्थान 'बद्दिवेलिलक्ष्यक्क-पालयम्' कहा जाता है। टीकामें इसका कोई संकेत नहीं है।

इनके पिताका 'श्रीशैलगुरु' था। इनका जन्म वत्स गोत्रमें हुआ था। प्रारम्भिक अक्षर ज्ञान कहाँ हुआ, यह तो निश्चित रूपसे कहा नहीं जा सकता। तथापि प्रौढ़ग्रन्थोंका अध्ययन इन्होंने अपने पितासे ही पूर्ण किया ये अपने पिताके अनन्य भक्त थे। इन्होंने प्रत्येक अध्यायकी पुष्पिकामें उनके तथा अपने गोत्रका उल्लेख किया है।

इन्होंने श्रीशैलको शैलदेशिकके नामसे अभिहित किया है। उनकी महिमाका भाव भरे शब्दोंमें उल्लेख उनकी स्नेह भावनाका द्योतक है—

चिकीर्षाऽमोघा सा निरवधि कृपालोककलिता
यया यस्यास्यान्तं विवृति रचनायाः समगमम्।
स एव श्रीशैलो गुरुरखिलविद्या जलनिधिः
मम स्यातां स्वान्तश्चरणकमलं सम्प्रकटयन् ॥१॥

क्वेहं गभीर निगमान्त रहस्यसारं
क्वाहं सुमन्दं मतिरत्र परं निदानम्।
वीक्षा यदीय करुणा कलितामेव
श्रीशैलदेशिकवरं शरणं गतोऽस्मि ॥२॥

इनके पितामहका अहोबल था। श्रीमद्-भागवत शास्त्रका अध्ययन इन्हें पिता शैलगुरु ने ही कराया था।

श्रीशैलपूर्णादखिलेतिहास-
पुराणजालं समवाप्ययेन।
प्रावर्त्ति सन्दर्शयतेवशिष्यं
भावं मुनि लक्ष्मणमाश्रयेऽहम् ॥

इस श्लोकसे यह स्पष्ट है कि इन्होंने पुराणोंका एवं इतिहास (महाभारत) का अध्ययन भी उनसे किया था।

सम्प्रदाय—

'श्रीविष्णुचित्त' गुरु" से ज्ञात होता है कि ये इनके गुरु थे। एक श्लोकमें श्रीरामानुजाचार्य, कुरुकेश्वर, गुणनिधि, वात्स्य (शैल), वरदाचार्य, वाग्विजयज (सुदर्शनाचार्य), व्यास आदिको नमस्कार किया है। अतः ये विशिष्टाद्वैत सम्प्रदायके अनुगामी थे।

श्रीवीरराघवने लिखा है कि—"श्रीमद्-भागवत एक अपूर्व ग्रन्थ है। यह पुराण तिलक कहा जाता है, अनेक विद्वानोंने इसकी व्याख्या की है, इसपर टीका करनेका साहस गुरुजनोंके आशीर्वादसे कर रहा हूँ। विद्वान् मुझे क्षमा प्रदान करें।"

"श्रीमद्भागवतं पुराणतिलकं
व्याख्यातभिर्व्याकृतम्,
व्यासार्यैयतिराज भाष्य वच-
सामर्हं बुधानां मुदे।
मन्दानामपि मादृशामव-
गमाच्चाहं जयादर्शितम्,
पन्थानं समुपाश्रितो विवृ-
णुयां मत्साहसं क्षम्यताम् ॥"

वीरराघवाचार्यका विश्वास है कि ऐसी टीका-रचना बिना भगवत्कृपाके संभव नहीं हो सकती ।

स्थितिकाल—

वीरराघवाचार्यके जन्मसमयके बारेमें प्रामाणिक वचन तो उपलब्ध नहीं है। तथापि कतिपय प्रमाणोंके आधारपर उनका समय निर्द्धारित किया जा रहा है—

इन्होंने "श्रीरामानुज योगि" श्लोकद्वारा रामानुजका उल्लेख किया है, इससे इन्हें श्रीरामानुजाचार्यके पश्चात् ही मानना होगा । श्रीरामानुजाचार्यका समय सम्वत् १०७४ वि० संवत् ···माना गया है ।

टीकामें भी इनके भाष्यकी ओर संकेत है । 'तत्रत्य श्रुतप्रकाशिकायां च" इस पद-द्वारा इन्होंने सुदर्शनसूरीके ग्रन्थका निर्देश किया है । सुदर्शनसूरी १३६७ ई० (सम्वत् १४२४) में आक्रमणमें विद्यमान थे । अतः ये उनके पश्चात् उत्पन्न हुए होंगे ।

श्रीधरस्वामीकृत भावार्थ-दीपिका टीकामें चतुर्थ स्कन्धके द्वितीयाध्यायमें शिवकी स्तुति की गई है, जब कि मूल भागवतमें उनकी निन्दाका पक्ष स्पष्ट दिखलाई देता है । इन पंक्तियोंको वीरराघवाचायने 'केचित्' कहकर पूर्वपक्षमें रखकर उनका खण्डन किया है। एवं 'त्वादृश' का प्रयोग श्रीधर स्वामीके लिए किया है । अतः ये श्रीधरस्वामीके पश्चात् हुए थे, ऐसा निश्चित होता है । श्रीधरस्वामी-का समय १४५० विक्रम सम्वत् तक माना जाता है ।

सप्तम स्कन्धमें वीरराघवाचार्यने वरद-गुरुका उल्लेख किया है । वरदगुरु रामानुजा-चार्यके भागिनेय एवं शिष्य थे । सुदर्शनाचार्य भी वरदगुरु के शिष्य थे । वरदगुरु का समय १२ वीं शताब्दीका अन्त एवं तेरहवींका प्रारम्भ माना गया है । इससे भी वीरराघवाचार्यका समय १४ वीं शताब्दीके पश्चात् सिद्ध होता है । श्रीचैतन्य महाप्रभुके अनुयायी श्रीविश्वनाथ चक्रवर्त्ती आदिकी टीकाओंमें वीरराघवके मतकी समालाचना है । अतः श्रीधरस्वामीके पश्चात् एवं श्रीविश्वनाथके पूर्व इनका स्थितिकाल माना जा सकता है । श्रीबलदेव उपाध्यायने इनका समय १४ वीं शताब्दी लिखा है ।

वरदाचार्यके प्रधान शिष्य—वाधूल वंशीय श्रीवीरराघवदासाचार्यका भी यही समय है । भ्रान्तिवश इन दोनोंको एक ही समझा जाने लगा है । किन्तु यह भारी भूल है। भागवत—टीकाकारके पिता शैलगुरु थे तथा वीरराघवदासके पिताका नाम नरसिंह गुरु था ।

कृतियाँ—

वीरराघवाचार्य बहुश्रुत विद्वान् एवं षट्-दर्शनके मर्मज्ञ विद्वान् थे । यह बात इनकी एकमात्र कृति 'श्रीभागवतचन्द्र-चन्द्रिका' से ज्ञात होता है एवं इनके अगाध पाण्डित्यका प्रकाश हो जाता है ।

—डा० श्रीवासुदेवकृष्ण चतुर्वेदी
एम. ए; पी. एच. डी.

श्रीश्रीगुरु-गौराङ्गौ-जयतः

श्रीचैतन्य महाप्रभुकी स्वयं-भगवत्ता प्रतिपादक कतिपय शास्त्रीय-प्रमाण

प्रस्तावना

समग्र विश्वको विशुद्ध भगवत्प्रेमरससे आप्लावित करनेवाले, श्रीभगवन्नाम-संकीर्तनके प्रवर्तक, श्रीचैतन्य महाप्रभुको कौन नहीं जानता ? उन्हींकी अहैतुकी कृपासे आज केवल बंगाल या भारतमें ही नहीं, प्रत्युत् विश्वके कोने-कोनेमें कृष्णनाम संकीर्तनकी मधुर ध्वनि गूँज रही है। सांसारिक विषय भोगोंमें प्रमत्त रहनेवाले पाश्चात्य देशोंके अगणित शिक्षित युवक-युवतियाँ भी आज लोक-लज्जाका पूर्णरूपेण परित्याग कर सब प्रकारसे सदाचार ग्रहण कर घर-घरमें, गलियों-गलियोंमें, नगरों-नगरोंमें मृदंग और करताल बजाते हुए भावमें विभोर होकर श्रीकृष्णनामका कीर्तन कर रहे हैं। आजसे लगभग ४८५ वर्ष पूर्व कलियुग पावनावतारी श्रीचैतन्य महाप्रभुजीने स्वयं भविष्यवाणी की थी कि शीघ्र ही विश्व भरमें उनके नामका प्रचार होगा—

पृथिवीते आछे जत नगरादि ग्राम ।
सर्वत्र प्रचार हइबे मोर नाम ।।

व्रजेन्द्रनन्दन श्रीकृष्ण ही श्रीमती राधिका के भाव और कान्तिको धारण कर श्रीचैतन्य महाप्रभुके रूपमें प्रकटित हैं। वेद, उपनिषद्, पुराण-उपपुराण, महाभारत एवं महापुरुषों द्वारा रचित ग्रन्थोंमें श्रीचैतन्य महाप्रभुकी स्वयं-भगवत्ताके प्रमाणोंका भूरि-भूरि उल्लेख है। किसी प्रेमी भक्तके निम्नलिखित पंक्तियों में बड़े ही सुन्दर और सरल शब्दोंमें श्रीचैतन्य-महाप्रभुके अवतरणका कारण परिस्फुट है—

भाव राधिका माधुरी, आस्वादन सुख काज ।
जयति कृष्ण-चैतन्य जय, कलि प्रकटे व्रजराज ।।

संक्षिप्त जीवन-चरित्र

स्वय-भगवान् श्रीचैतन्य महाप्रभुका आविर्भाव पुण्यतोया भगवती भागीरथीके पुनीत तटपर पश्चिम बंगालके नदिया जिलान्तर्गत श्रीधाम नवद्वीप—श्रीमायापुरमें सम्वत् १५४२, सन् १४८६ ई० में चन्द्रग्रहण एवं शनिवारसे युक्त फाल्गुनी पूर्णिमाको सायंकाल में हुआ था। ग्रहणके कारण सारा नगर हरिनाम-संकीर्तनकी मधुर ध्वनिसे मुखरित हो रहा था। पिताका नाम प० जगन्नाथ मिश्र और माताका नाम श्रीशचीदेवी था।

नवजात शिशुके मातामह पं० नीलाम्बर चक्रवर्ती एक प्रकाण्ड एवं प्रख्यात ज्योतिषी थे। उन्होंने शिशुके जन्मके समय-स्थित सिंह-लग्न और सिंह-राशि आदिका विचार कर उसे अलौकिक महापुरुषके सम्पूर्ण लक्षणोंसे युक्त एवं अखिल विश्वका भरण-पोषण करने वाला बतलाकर उसका नाम विश्वम्भर रखा। माता-पिता एवं पास-पड़ौसके लोग प्यारसे उसे गौरसुन्दर, गौराङ्ग, निमाई, गौरहरि और श्रीशचीनन्दन इत्यादि नामोंसे पुकारते थे। बचपनमें निमाई नाम ही सर्वाधिक प्रसिद्ध था।

बाल्यावस्थामें बालसुलभ चपलतासे और कभी-कभी परम चमत्कारपूर्ण अलौकिक लीलाओंसे, पौगण्डावस्थामें विद्याविलाससे तथा किशोरावस्थामें शास्त्र-विधिसे विवाह करके शास्त्रसम्मत आदर्श गृहस्थ-धर्मके पालन एवं भक्ति-प्रचारसे गौड़भूमिको परमानन्दसे आप्लावित कर दिया। तदनन्तर श्रीमाधवेन्द्र-पुरी (श्रीब्रह्ममाध्व-परम्परा) के शिष्य श्रीईश्वरपुरीजीसे गयाक्षेत्रमें दशाक्षर गोपाल-मंत्रकी दीक्षा ग्रहण कर जीवोंको शास्त्रोक्त लक्षणसम्पन्न सद्गुरुके श्रीचरणाश्रय ग्रहणरूप कर्तव्यकी शिक्षा दी। गयासे लौटकर भक्त-मण्डलीके साथ श्रीहरिनाम-संकीर्त्तन द्वारा भक्ति-सरिताको प्रवाहित कर गौड़भूमिको निमज्जित कर दिया। २४ वर्षकी अवस्थामें श्रीकेशव भारतीसे संन्यास ग्रहण कर ६ वर्ष तक दक्षिण भारत एवं श्रीवृन्दावन (उत्तर भारत) की यात्रा कर लाखों जीवोंको श्रीनामप्रेम प्रदान कर कृतार्थ कर दिया। तदुपरान्त १८ वर्षतक श्रीजगन्नाथपुरीमें अचलवास करके श्रीकृष्ण-प्रेमके प्रवाहसे सम्पूर्ण भारतको आप्लावित किया। इस बीच उन्होंने श्रीस्वरूप-दामोदर, श्रीराय रामानन्द, श्रीप्रबोधानन्द, श्रीरूप, श्रीसनातन, श्रीरघुनाथदास, श्रीगोपालभट्ट, श्रीजीव, कविकर्णपूर प्रभृति अपने सिद्ध पार्षदोंके हृदय में शक्ति एवं प्रेरणा प्रदान कर निज-विशुद्ध-भक्तिरस पोषक अनेकों ग्रन्थ-रत्नोंकी रचना करवाई। उन्हीं श्रीगौरांगदेवने स्वयं भक्तिके समस्त सिद्धान्तोंसे परिपूर्ण "श्रीशिक्षाष्टक" की रचना करके अधिकारी जीवोंको इसकी शिक्षा दी। कभी कभी अपने परम अन्तरंग पार्षद श्रीस्वरूप दामोदर और राय रामानन्द के साथ एकान्तमें इस "शिक्षाष्टक" के तात्पर्यामृतका रसास्वादन किया करते थे। ये प्रसंग श्रीचैतन्य-चरितामृत आदि ग्रन्थोंमें विद्यमान हैं।

इस प्रकार स्वयं-भगवान श्रीगौराङ्गदेवने एक ओर अपनी आदर्श भक्तिमय गृहस्थ-लीला द्वारा स्वधर्मपरायण गृहस्थोंको जहाँ सद् गृहस्थाचरणकी शिक्षा दी है, वहाँ दूसरी ओर अपने आदर्श त्यागपूर्ण किन्तु उच्चतम भक्ति-रसमय संन्यास-लीलासे सम्पूर्ण परिव्राजक मण्डलीको (विरक्तोंको) शिक्षा दी है।

श्रीचैतन्य महाप्रभुकी स्वयं भगवत्ताके शास्त्रीय प्रमाणोंको उद्धृत करनेसे पूर्व श्रीचैतन्य चरितामृत आदि प्रामाणिक ग्रन्थों में वर्णित उनकी भगवत्तासूचक कतिपय अलौकिक लीला-प्रसंगोंको प्रस्तुत किया जा रहा है।

श्रीचैतन्यमहाप्रभुकी भगवत्ता-प्रकाशक कतिपय अलौकिक लीलाएँ

(१)

बालक निमाई घुटनों और हाथोंके बल चलने लगा है। श्रीजगन्नाथ मिश्र एवं श्रीशची-देवी उसकी बालसुलभ क्रीड़ाओंका निहार कर फूले नहीं समाते। उस दिन शामको भारतके विभिन्न तीर्थोंमें भ्रमण करते हुए एक भक्त-विप्र घरपर अतिथि थे। मिश्र-दम्पतिने श्रद्धापूर्वक लीपपोत कर चौका लगाकर रसोईकी सारी सामग्री प्रस्तुत की। विप्र महो-दयने स्वयं पाक किया और विधिपूर्वक अपने इष्टदेव श्रीबालगोपालको भोग निवेदन कर उनका ध्यान करने लगे। इसी बीच कुछ शब्द सुनकर चौंक पड़े। आँखें खुलने पर देखा, बालक निमाई किलकारियां मारता हुआ भोगके थालमें हाथ डालकर प्रसाद ग्रहण कर रहा है। ब्राह्मण देवता हाय-हाय करने लगे। मिश्र और मिश्राणी यह देखकर बड़े दुःखित हुए। उनके बार-बार अनुरोध करने पर विप्रने दूसरी बार रन्धन किया और पुनः भोग लगाया। परन्तु इस बार भी चचल निमाईने न जाने कहाँसे उपस्थित होकर भोगको जूठा कर दिया। विप्रदेव पुनः हाय-हाय करने लग गए। इस बार मिश्र दम्पतिको बहुत दुःख हुआ। रात भी काफी हो चुकी थी। परन्तु निमाईके बड़े भाई विश्वरूपके अत्यधिक आग्रहके कारण विप्रने तीसरी बार रसोई तैयार कर भोग निवेदन किया। इस बार बालक निमाईको पड़ोसीके घरमें बन्द करके रखा गया। किन्तु आश्चर्यकी बात हुई कि ज्योंही विप्रने भोग अर्पण कर आंख बन्द किया और गोपाल मंत्र जपना आरम्भ किया, त्योंही बालक निमाई हँसता हुआ भोगमें हाथ लगा कर खाते हुए दिखाई पड़ा। विप्रदेव पुनः हा-हाकार कर उठे। इतनेमें निमाईने शंख-चक्र-गदा-पद्म धारण किये हुए चतुर्भुज रूपमें एवं एक हाथमें मक्खन रख दूसरे हाथसे मक्खन खाते हुए अद्भुत सौंदर्य मण्डित बाल-गोपाल रूपमें दर्शन दिया। सौभाग्यवान् विप्र-देव अपने इष्टका दर्शन कर प्रेमसे गद्-गद् हो पड़े। भगवान् विप्रको अपनी इस लीलाको गुप्त रखनेका आदेश देकर अन्तर्धान हो गये। ब्राह्मण-देवता उस रूपका चिन्तन करते हुए प्रेमसे महाप्रसाद पाकर कृतकृत्य हो गए।

(२)

नवद्वीपकी पण्डितमण्डली अत्यन्त चिन्तित हो उठी है। दिग्विजयी पंडित केशव-काश्मीरी भारतके समस्त प्रसिद्ध प्रसिद्ध पण्डितोंको शास्त्रार्थमें पराजित करते हुए हजारों घोड़ों, हाथियों और शिष्योंको साथ लेकर नवद्वीप-विजयके लिएपधारे हैं। नगरमें सर्वत्र इसीकी चर्चा है। पूर्णिमाका चन्द्र अपनी शुभ्र-सुशीतल ज्योत्सनाको सर्वत्र बिखरते हुए पूर्व दिशासे झाँक रहा है। भगवती भागीरथीके मनोरम तटपर प्रखर प्रतिभासम्पन्न किशोर अवस्था-वाले पण्डित निमाई अपनी छात्र मण्डलीके बीचमें बैठकर विद्या-चर्चा कर रहे हैं। दैव-

योगसे दिग्विजयी पण्डित भी घूमते-फिरते वहीं उपस्थित हुए। छोटे-छोटे बालकोंको विद्या-चर्चा करते हुए देखकर वे भी उन्हींके बीच बैठकर उनसे वार्तालाप करने लग गये। उन्होंने निमाई पण्डितजीसे पूछा—"तुम्हारा नाम क्या है ? क्या पढ़ते हो ?" निकटबैठे हुए एक छात्रने उत्तर दिया—"ये ही हमारे निमाई पण्डितजी हैं।" दिग्विजयी पण्डित पहले ही निमाई पण्डितके सम्बन्धमें सुन चुके थे। वे उनकी प्रतिभा देखकर कुछ सहम-से गये। निमाई पंडितने बात बदलकर दिग्विजयी पंडित-से पापनाशिनी गङ्गाका माहात्म्य वर्णन करनेके लिए कहा। कहने मात्रकी देर थी कि दिग्वि-जयी पण्डित विभिन्न अलंकारोंसे युक्त सुन्दर, सरस एवं सर्वथा नवीन सैकड़ों श्लोक सुस्वर से धड़ाधड़ बोलने लगे। छात्रमण्डली स्तब्ध और अवाक् रह गई। ऐसा अद्भुत पाण्डित्य सरस्वतीके वरसे ही सम्भव है।

अपनी प्रतिभाकी धाक जमा कर दिग्विजयी पण्डित गर्वसे छात्रमण्डलीकी ओर देखने लगे। परन्तु उससे भी आश्चर्यकी बात यह हुई कि अति क्षिप्रतासे कहे गए सर्वथा नवीन श्लोकोंके बीचका एक श्लोक उच्चारण करते हुए निमाई पण्डितने दिग्वि-जयी पण्डितसे उक्त श्लोकके दोष-गुण विवे-चन करनेके लिए निवेदन किया।

दिग्विजयी पण्डितने मन ही मन विस्मित होते हुए भी ऊपरसे कहा—"दिग्वि-जयी पण्डितके श्लोकोंमें केवल गुण ही गुण होते हैं, दोष नहीं।" और साथ ही साथ उसके पाँच गुण भी बतलाए। निमाई पण्डि-तने उक्त गुणोंके अतिरिक्त अन्य पाँच गुणोंको और अनेकों दोषोंमें से मुख्य पाँच दोषोंको दिखलाकर दिग्विजयीकी बोलती बन्द कर दी। दिग्विजयीकी प्रतिभा मलीन हो गई। वे सर्वस्व खोए हुए व्यापारीकी भाँति थके-हारे और लज्जित होकर खेमेमें लौट आये और अपनी अप्रत्याशित पराजयका रहस्य जाननेके लिए अपनी आराध्या सरस्वतीका ध्यान करने लगे। सरस्वती देवीने उन्हें दर्शन देकर कहा—"आज मेरी आराधनाका यथार्थ फल तुम्हें मिला है। ये निमाई पण्डित कोई साधारण बालक नहीं हैं। बल्कि मेरे पति स्वयं भगवान श्रीकृष्ण हैं। उनके श्रीचरणकमलोंमें शीघ्र आत्मसमर्पण करो।" दिग्विजयी पण्डित सवेरे ही निमाई पण्डितके श्रीचरणोंमें लकुटी की भांति गिरकर क्षमा प्रार्थना कर रहे थे। ठीक ही है, विद्या की परिसमाप्ति भगवत् चरणारविन्दोंकी शरणागतिमें ही तो सार्थक है।

(३)

भक्तप्रवर श्रीवास पण्डित अपने गृह-स्थित मन्दिरमें श्रीनृसिंह भगवानकी पूजा कर रहे थे। अकस्मात् श्रीश्रीशचीनन्दन गौरहरि उसी समय वहाँ उपस्थित हुए और पण्डित श्रीवासका नाम ले-लेकर पुकारने लगे। श्रीवास पण्डितने बाहर झाँककर देखा तो देखते ही रह गए। देखते-ही-देखते शचीनन्दन गौरहरिने शंख, चक्र, गदा, पद्म धारण कर दिव्य-चतुर्भुज नृसिंह रूप धारण कर लिया। पण्डित प्रेमसे गद्-गद् होकर उनकी विधिवत्

पूजा कर विभिन्न श्रीनृसिंह मंत्रों एवं स्तोत्रोंसे उनकी स्तुति करने लगे। उनकी स्तुति और पूजासे प्रसन्न हो उनको वरदान देकर पुनः हँसते हुए श्रीशचीनन्दन विश्वंभरके रूपमें प्रकटहो गए। श्रीवास पण्डित उनके श्रीचरण-कमलों पर गिरकर लोटने-पोटने लगे।

(४)

गौड़ प्रदेशमें यवन शासनकी संकीर्तन सम्बन्धी निषेध-आज्ञासे सर्वत्र ही भीषण आतंक छा रहा था। भक्तजन भी मन-ही-मन भयभीत हो रहे थे। श्रीशचीनन्दन गौरहरि भक्तजनोंकी मनोभावनाको समझ गए। कहीं पर श्रीमद्भागवतकी कथा हो रही थी—श्रीवराह अवतारका प्रसङ्ग चल रहा था। उस प्रसङ्गको सुनकर श्रीगौरसुन्दर श्रीवराह-वेषसे गर्जन करते हुए परम भक्त श्रीमुरारिगुप्त के घर पधारे और वहाँ उन्होंने चतुर्भुज वराह मूर्ति प्रकट कर भक्तोंको निभय होकर संकीर्तन करनेका आदेश दिया। मुरारिगुप्तने उनका पूजन एवं स्तवन कर उन्हें प्रसन्न किया। उस दिनसे भक्तजन निर्भय होकर सर्वत्र ही जोर-जोरसे हरिनाम संकीर्तन करने लगे।

(५)

श्रीव्यास-पूर्णिमाका दिन था। श्रीवास पण्डितके घरपर श्रीमन्महाप्रभुजी, श्रीनित्यानन्द प्रभु एवं सम्पूर्ण भक्तमण्डली एकत्रित थी। मृदु-मधुर स्वरसे हरिनाम-संकीतन चल रहा था। श्रीमन्महाप्रभुके निर्देशानुसार श्रीवास पण्डित श्रीव्यास-पूजाका पौरोहित्य कर रहे थे। श्रीवास पण्डितने सर्व-प्रथम श्रीपाद नित्यानन्दजीके हाथोंमें पुष्प, पुष्प-माल्य, चन्दन और पूजाकी अन्यान्य सामग्री देकर उन्हें श्रीव्यास-पूजनके लिये इंगित किया। श्रीनित्यानन्द प्रभु पहले तो भाव-विभोर होकर चुप-चाप खड़े रहे, तत्पश्चात् अकस्मात् समीप ही बैठे हुए श्रीमन्महाप्रभुजी के गलेमें सचन्दन-पुष्पमाला डाल दी। गलेमें माला देते ही श्रीमन्महाप्रभुजी चार हाथोंमें शंख, चक्र, गदा, पद्म और दो हाथोंमें हल और मूषल धारण कर षड्भुज स्वरूपमें प्रकट हो गये। श्रीनित्यानन्दप्रभु श्रीषड्भुज मूर्तिका दर्शन करके प्रेमातिरेकसे विह्वल होकर पृथ्वी पर गिरकर अचेत हो गये। श्रीमन्महाप्रभुजी ने उक्त षड्भुजरूपका सम्वरण कर अपने कोमल-कर स्पर्शसे उनकी मूर्च्छा दूरकरदी। भक्तजन इस अपूर्व लीलाका दर्शन कर प्रेममें विह्वल होकर दोनों प्रभुओंकी परिक्रमा करते हुए उद्दण्ड भावसे नृत्य-कीर्तन करने लगे।

(६)

श्रीगौराङ्ग महाप्रभुजी श्रीवास-भवनमें भगवद्भावमें आविष्ट होकर सात प्रहरतक भक्तों को विविध प्रकारके वरप्रदान कर रहे थे, उनका वह भगवद्-आवेश पूरे सात प्रहरतक चलता

रहा। उनके आदेशसे श्रीनवद्वीपके एक छोर पर फूसकी टूटी-फूटी झोंपड़ीमें सारी रात उच्च स्वरसे संकीर्तन करनेवाले श्रीधर बुलाकर लाये गये। श्रीमन्महाप्रभुजीने अपनी किशोरावस्थामें इनसे प्रेम-कलह करके प्रतिदिन केलेके पत्ते या केलेका फूल (मोचा) अथवा थोड़ (केलेके पौधेके बीचकी कोमल डंडी) कुछ-न-कुछ अवश्य लेते और उ घरले जाकर सब्जी बनवा कर भगवदर्पणके पश्चात् बड़े प्रेमसे पाते। उन श्रीधरको उपस्थित देख कर श्रीमन्महाप्रभुजी बड़े प्रसन्न हुए और उनको अपना दिव्य स्वरूप दर्शन कराया। श्रीधरने देखा—अद्भुत श्यामसुन्दर मदनमोहन श्रीकृष्णरूप। अधरपल्लवोंपर मोहन वंशी विराजमान है, दक्षिणमें श्रीबलरामजी सुशोभित हैं। ब्रह्मा, शिव, सनत्कुमार, नारद और शुकादि नाना-प्रकारसे स्तवन कर रहे हैं। इस स्वरूपका दर्शन करते ही भक्त श्रीधर प्रेममें विह्वल हो पड़े। शरीरकी सुध-बुध जाती रही। वे मूर्छित होकर पृथ्वीपर गिर पड़े।

(७)

उपरोक्त दिन ही राम-भक्त श्रीमुरारिगुप्तको श्रीमन्महाप्रभुजीने जगज्जननी श्रीसीताजी और श्रीलक्ष्मणजीके साथ नव दूर्वादल श्यामकान्ति विशिष्ट परम मनोहर श्रीरामचन्द्रके रूपसे दर्शन दिया था।

(८)

एक दिन श्रीअद्वैताचार्यजी श्रीवास अंगनमें गोपीभावमें आविष्ट होकर नृत्य कर रहे थे। उनका नृत्य किसी प्रकार रुक नहीं रहा था। भक्तजनोंने बड़े प्रयत्नसे किसी प्रकार उनको स्थिर किया। परन्तु उनका भावावेश दूर नहीं हुआ। अब वे कृष्ण-विरहमें अतिशय आर्त होकर हा कृष्ण ! हा कृष्ण !! पुकारते हुए रो-रोकर आंगनमें लोटने लगे। सर्वान्तर्यामी श्रीमन्महाप्रभुजी उनकी वैसी दशा अवगत होकर अपने घरसे शीघ्र ही श्रीवास-अंगनमें उपस्थित होकर बोले—"आचार्य ! क्या अभिलाषा है ?" अद्वैताचार्य ने प्रार्थनाके स्वरमें कहा—"श्रीकृष्णवतारमें अर्जुनको दिखलाये हुए विश्वरूपका दर्शन करना चाहता हूँ।" इतना कहनेके साथ ही अद्वैताचार्यने विस्मित होकर देखा कि श्रीगौराङ्ग महाप्रभु विराट एवं भीषण 'विश्वरूप' धारण कर उनके सामने खड़े हैं। दोनों सैन्यदलोंके मध्यमें उस अद्भुत विश्वरूपका दर्शन कर अर्जुन हाथ जोड़कर स्तव कर रहे हैं। अद्वैताचार्य भी परम विस्मित होकर स्तव-स्तुति करने लगे। उसी समय श्रीनित्यानन्दप्रभु भी वहाँ उपस्थित हुए। वे तो विश्वरूपका दर्शन करके आँखें बन्द कर दण्डकी भाँति पृथ्वीपर गिर पड़े।

(९)

कटवाग्राममें संन्यास ग्रहण कर श्रीराधाभावद्युतिसुवलित श्रीकृष्णचैतन्य महाप्रभु कृष्ण-मिलनकी तीव्र उत्कंठासे आतुर होकर 'हा कृष्ण !' 'हा प्यारे कृष्ण !!' आर्त-

नाद करते हुए श्रीजगन्नाथपुरी पधारे। वहाँ मन्दिरमें श्रीजगन्नाथजीका दर्शन करके—'प्राणनाथ कृष्णको पा लिया'—ऐसा कहते हुए आवेगमें भरकर उनका आलिंगन करनेके लिए दौड़े। किन्तु वहाँतक पहुँचनेके पूर्व ही बेसुध होकर पृथ्वीपर गिर पड़े। उनके अंगों में सुदीप्त अष्ट सात्त्विकआदिभावोंको लक्ष्य कर वहाँ उपस्थित तत्कालीन अतुलनीय प्रकाण्ड विद्वान एवं राजपण्डित श्रीसार्वभौम भट्टाचार्य को बड़ा ही चमत्कार हुआ। उन्होंने सोचा कि इस व्यक्तिके अंगोंमें प्रेमकी सर्वोच्च दशा में प्रकट होनेवाले जो अष्टसात्त्विक आदि भाव–समूह दृष्टिगोचर हो रहे हैं, वे किसी मनुष्य शरीरमें संभव नहीं हैं। अतएव ये निश्चय ही कोई विलक्षण महापुरुष हैं। ऐसा सोचकर उन्हें अचेतावस्था में ही उठवाकर अपने घर ले गए। चेतना लौटने पर अपने भगिनिपतिके मुखसे उक्त-नव-संन्यासीका पूर्व परिचय पाकर बड़े प्रसन्न हुए।

दो-चार दिन बीतनेपर सार्वभौम भट्टाचार्य महोदयने नव-संन्यासीको संन्यासी धर्म की रक्षाके लिए 'वेदान्त-सूत्र' पढ़ाना आरम्भ किया। सार्वभौम भट्टाचार्य वेदान्तसूत्रके शंकर भाष्यके तात्कालीन भारतके मूर्धन्य पण्डित माने जाते थे। वे लगातार सात दिनों तक नव-संन्यासीको मौनभावसे श्रवण करते देखकर बड़े विस्मित हुए। उन्होंने पूछा—'आखिर कुछ समझते हो या नहीं ?' श्रीचैतन्य महाप्रभुजीने सरलतासे उत्तर दिया—'वेदान्तके सूत्रोंको तो बड़े ही स्पष्ट रूपसे समझता हूँ, परन्तु आपकी व्याख्यासे सूत्रोंका स्वाभाविक अर्थ आच्छादित हो जानेसे मुझे बड़ा ही दुःख होता है। सूत्रोंसे स्वाभाविक रूपमें अभिधावृत्ति द्वारा परम ब्रह्मके चिन्मय नाम, रूप, गुण, लीला एवं उनको अघटन पटीयसी पराशक्तिका बोध होता है। परन्तु आपकी व्याख्यामें कल्पनाके आधारपर लक्षणा वृत्ति द्वारा परम ब्रह्मको निर्विशेष, निराकार प्रमाणित करनेका केवल दुराग्रह दिखलायी पड़ता है।

भट्टाचार्यने पूर्वपक्ष करते हुए सूक्ष्मातिसूक्ष्म एवं कूट युक्ति-तर्कोंकी अवतारणा की; परन्तु श्रीचैतन्यमहाप्रभुजीने अपने प्रबल शास्त्रीय प्रमाणों एवं अकाट्य युक्तियोंसे उनको निरुत्तर कर दिया। अन्तमें सार्वभौम भट्टाचार्यने श्रीमद्भागवतके 'आत्मरामाश्च' श्लोकका अर्थ पूछा। श्रीमन्महाप्रभुजीने श्रीसार्वभौम भट्टाचार्यके पूर्वकृत नौ प्रकारके अर्थोंको छोड़कर अट्ठारह प्रकारके सर्वथा नवीन अर्थ बतलाया। सार्वभौमजी श्रीमन्महाप्रभुजीके श्रीचरणकमलोंमें गिर पड़े। श्रीमहाप्रभुजीने कृपा करके उन्हें पहले चतुर्भुज नारायण-स्वरूपके और पीछे द्विभुज मुरलीधर श्यामसुन्दर-रूपके दर्शन कराये। सार्वभौमजी कृतकृत्य होकर उनकी स्तुति करने लगे—

वैराग्य-विद्या निजभक्तियोग,

शिक्षार्थमेकः पुरुषः पुराणः।

श्रीकृष्णचैतन्य शरीरधारी,

कृपांबुधिर्यस्तमहं प्रपद्ये ॥

(१०)

श्रीचैतन्य महाप्रभुजी श्रीजगन्नाथपुरी एवं दक्षिण भारतको कृष्ण-प्रेमसे आप्लावित करते हुए क्रमशः गोदावरीके तटपर पधारे। वहाँ उनकी भेंट आंध्र-प्रदेशके प्रधान शासक (Governor) परम रसिक महाभागवत राय रामानन्दजीसे हुई। दोनोंमें प्रेम-तत्त्वकी साधनावस्थाके प्रथम सोपानसे प्रारंभ कर उसकी सर्वोन्नत साध्यावस्थाके चरम सोपान तकके विषयोंमें परम चमत्कारपूर्ण वार्त्तालाप हुआ। अंतमें राय रामानन्दजीको ऐसा प्रतीत हुआ कि यह संन्यासी और कोई नहीं, श्रीराधाभावद्युति-सुवलित साक्षात् व्रजेन्द्र-नन्दन श्रीकृष्ण ही हैं। अपनी भगवत्ता छिपानेकी भरसक चेष्टा करने पर भी प्रेमी भक्तके सामने श्रीचैतन्य महाप्रभुजी अपनेको गुप्त न रख सके। उन्होंने राय रामानन्दजीको महाभावस्वरूपा श्रीमती राधिकाद्वारा आलिंगित रसराज कृष्णके रूपमें दर्शन देकर कृतार्थ कर दिया।

(११)

श्रीचैतन्य महाप्रभुजी दक्षिणके तीर्थोंमें भ्रमण करते हुए कूर्माचल धाममें उपस्थित हुए। उनके भावमय नृत्य और संकीर्त्तनसे आकृष्ट होकर श्रद्धालु भक्तोंकी अपार भीड़ एकत्र होने लगी। अगणित जन उनके प्रभाव से वैष्णव हो गये।

कूर्माचलके पास ही एक श्रद्धालु विप्र रहते थे। उनका नाम वासुदेव था। उनके सारे अङ्गोंमें गलित कुष्ठ था, जिनमें असंख्य कीड़े भरे पड़े थे। जब कोई कीड़ा उनके अङ्गस्थित घावोंसे निकलकर पृथ्वी पर गिर पड़ता, तब वे यह सोचकर कि ये कीड़े मर न जावें, उन्हें उठाकर पुनः उनके पूर्व स्थान में रख लेते। धन्य है दयालुताकी इस सीमा की !

जब कुष्ठ-विप्र श्रीचैतन्य महाप्रभुके आगमनका वृत्तान्त अवगत हुए, तो वे भी बड़ी उत्कण्ठासे उनके दर्शनोंके लिये चल पड़े। श्रीचैतन्य महाप्रभुके समीप श्रद्धालु जनोंकी भीड़ लगी हुई थी। कुष्ठ विप्र अपनी घृणित अवस्थाका विचार कर दूरसे ही दण्डवत्-प्रणाम करते हुए भावातिरेकसे मूर्छित होकर पृथ्वी पर गिर पड़े। सर्वान्तर्यामी करुणा-वरुणालय श्रीचैतन्य महाप्रभु कुष्ठ विप्रको दूरसे पृथ्वीपर गिरते हुए देखकर तुरन्त दौड़कर उसके समीप पहुंचे और उसे अपने करकमलोंसे उठाकर प्रेमसे आलिंगन किया। महाप्रभुजीके त्रैलोक्यपावन स्पर्शसे विप्रका कुष्ठ रोग तत्काल ही सदाके लिये दूर हो गया। उसका शरीर अत्यन्त सुन्दर सुकान्त बन गया। यही नहीं, उस सौभाग्यशाली विप्रके अङ्गोंमें कृष्ण-प्रेमके भावसमूह भी प्रकट हो गये। वह श्रीचैतन्य महाप्रभुको व्रजेन्द्रनन्दन-श्रीश्यामसुन्दरके रूपमें दर्शन कर विविध प्रकारसे उनकी स्तव-स्तुति करने लगा।

(१२)

श्रीरथयात्राके दिन श्रीजगन्नाथ पुरीमें अपार जनसमूह उमड़ रहा था। भक्तजन बड़ी उत्कण्ठासे श्रीरथयात्राका दर्शन कर रहे थे। महाराज श्रीप्रतापरुद्र स्वय रथके आगे-आगे स्वर्ण-सम्मार्जनीसे पथ परिष्कार कर चन्दन और केवड़ाके जलसे सिचन करते-करते जा रहे थे। 'जय जगन्नाथ' के उच्च घोषोंसे आकाश मण्डल परिव्याप्त हो रहा। श्रीरथके आगे-पीछे और दोनों बगलोंमें सात कीर्तन मण्डलियाँ उन्मत्त होकर नृत्य और कीर्तन कर रही थीं। श्रीचैतन्य महाप्रभु भी दोनों हाथोंको उठाकर प्रेममें विभोर होकर कभी एक दलमें और कभी दूसरे दलमें नृत्य कर रहे थे। इसी बीच परम भक्त महाराज प्रतापरुद्रको एक बड़ा ही चमत्कार दिखाई पड़ा। श्रीचैतन्य महाप्रभु अपनी अघटन-घटन-पटीयसी योगमायाके प्रभावसे एक ही समय सातों संकीर्त्तन मण्डलियोंमें सात रूप धारण कर भावावेशमें नर्त्तन कर रहे थे। प्रत्येक मण्डलीके भक्तजन महाप्रभुजीको केवल अपने ही बीच देख कर और भी उल्लसित होकर नृत्य-कीर्तन कर रहे थे। श्रीचैतन्य महाप्रभुकी इस अलौकिक लीलाका दर्शन केवलमात्र महासौभाग्यवान महाराज प्रतापरुद्र एवं सार्वभौम भट्टाचार्यजीको ही सम्भव हुआ। वे परस्पर एक दूसरेके सौभाग्यकी प्रशंसा करने लगे।

(१३)

भक्तोंके अत्यधिक आग्रहसे श्रीचैतन्य महाप्रभुजीने केवलमात्र बलभद्र भट्टाचार्यको साथ लेकर झारिखण्डके बीहड़ वनपथसे वृन्दावनके लिये यात्रा की। कटकको दाहिने रखकर कुछ दूर आगे बढ़नेपर घनघोर जङ्गल मिला। स्थान-स्थानपर वनैले पशु मिलने लगे। श्रीमन्महाप्रभुजी कृष्ण-विरहके आवेशमें बाह्यज्ञानशून्य होकर—"हा कृष्ण! हा प्राणनाथ!!" पुकारते हुए उन्मत्तकी भाँति चले जा रहे थे। सिंह, भालू, हाथी और गेंड़ा आदि हिंसक पशु एवं विषधर सर्प आदि महाप्रभुका दर्शन कर मार्ग छोड़ कर किनारे हट जाते थे। भट्टाचार्य भयके मारे काँपने लगते।

एक दिन तो महाप्रभुजीका पैर रास्तेमें सोये हुए एक भयङ्कर बाघके ऊपर पड़ गया। महाप्रभुजीने आँखें खोलकर बाघको देखकर प्रेमसे बोले—"कृष्ण बोलो, कृष्ण बोलो"। बाघ उठ कर नृत्य करते हुए 'कृष्ण' 'कृष्ण' उच्चारण करने लगा। एक दूसरे दिन महाप्रभुजी जङ्गलके भीतर नदीमें स्नान कर रहे थे कि मदमत्त हाथियोंका एक दल जलपान करनेके लिये उसी स्थल पर आ पहुँचा। महाप्रभुजीने हाथमें जल लेकर 'कृष्ण-कृष्ण' उच्चारण करते हुए उन हाथियोंके ऊपर फेंक दिया। फिर तो जिन जिन हाथियोंके शरीर पर जलके वे छींटे लगे, वे सभी जोरोंसे 'कृष्ण कृष्ण' उच्चारण

कर नृत्य करने लगे।

इसी प्रकार वे वन-मार्गमें प्रतिदिन आर्त स्वरसे "हा कृष्ण ! हा कृष्ण !!" पुकारते हुए चलते। पीछे पीछे सिंह, बाघ, भालू, हिरण और मयूर आदि पशु-पक्षी परस्पर बैर भूलकर प्रेमसे एक साथ श्रीचैतन्यके मुखारविन्दको निहारते हुए चलते। कभी-कभी बाघ और हिरण एक दूसरेका मुख चुम्बन करते। आश्चर्यजनक दृश्य था। झारिखण्डके समस्त स्थावर-जंगम श्रीचैतन्य महाप्रभुके कृष्ण-प्रेमकी बाढ़में डूब-उतरा रहे थे। भगवत् कृपासे असम्भव भी सम्भव हो जाता है। बलभद्र भट्टाचार्य पग-पग पर महाप्रभुकी विचित्र लीलाओंको देखकर विस्मित तथा मुग्ध हुए पीछे पीछे चल रहे थे।

(१४)

सार्वभौम भट्टाचार्यजी श्रीमन्महाप्रभुके बड़े कृपापात्र थे। किन्तु इनके जामाता अमोघ कुछ कुटिल स्वभावका युवक था। वह बिना कारण ही भगवान और भक्तोंकी कभी कभी निन्दा करता था। सार्वभौम भट्टाचार्यजी उसके इस स्वभावसे बड़े दुखी रहते थे। एक दिन अकस्मात् उसे भीषण विसूचिका (हैजा) हो गया। कुछ ही देर में उसके अङ्ग शिथिल हो गये और 'अब मरा, तब मरा' की दशा हो गई। घरमें रोना-पीटना आरम्भ हो गया। श्रीचैतन्य महाप्रभुजीको यह सम्वाद मिलते ही वे झट भट्टाचार्यके घर पधारे। और बड़े प्यारसे अमोघकी छाती पर हाथ फेरते हुए बोले—अहो ! तुम तो सरल ब्राह्मण हो, मत्सरता चाण्डालिनीको भला अपने इस पवित्र हृदयमें क्यों बैठा रक्खे हो ? सार्वभौमके सत्सङ्गसे अब तुम्हारे जन्म जन्मांतरके पाप दूर हो गये उठो, "कृष्ण" "कृष्ण" बोलो। श्रीचैतन्य महाप्रभुजीके कोमल करकमलोंके स्पर्शसे अमोघ पूर्णस्वस्थ तो हो ही गया, अधिकन्तु मरण शय्यासे उठकर प्रेमोन्मत्त हो 'कृष्ण' 'कृष्ण' कहते हुए नृत्य करने लगा। उसके अङ्गोंमें अश्रु, पुलक, कम्प स्वेद आदि प्रेमके अष्ट सात्त्विक विकारोंको देखकर सार्वभौम भट्टाचार्य और श्रीमन्महाप्रभुके पार्षदवृन्द आश्चर्यचकित हो गये। ऐसा क्यों न हो ? श्रीमहाप्रभुजीका यह कथन है कि "भक्तोंके बन्धु-बान्धवोंको तो बात ही क्या, उनके दास-दासी तथा कुत्ते तक मुझे बड़े प्रिय हैं।"

(१५)

श्रीचैतन्य महाप्रभु अब दिन-रात विरहिणी श्रीमती राधिकाकी भाँति कृष्ण-विरह में तड़पते हुए 'हा कृष्ण' 'हा कृष्ण' किया करते। श्रीस्वरूप दामोदर और राय रामानन्दजी उनके भावोंके अनुरूप रासपञ्चाध्यायी, भ्रमरगीत आदिके श्लोक, कृष्णकर्णामृत, चण्डीदास और विद्यापतिके पद आदि सुनाकर उन्हें सान्त्वना देनेकी चेष्टा करते। किन्तु उससे उनका विरह और भी द्विगुणित हो उठता। वे कभी रोते, कभी हँसते, कभी मूर्छित हो जाते। कभी कभी तो किसी अपूर्व भाव दशाको प्राप्त हो जाते।

(क्रमशः)